हिंदुत्व का तत्त्वज्ञान
और
विश्व शांति में उसकी सांदर्भिकता

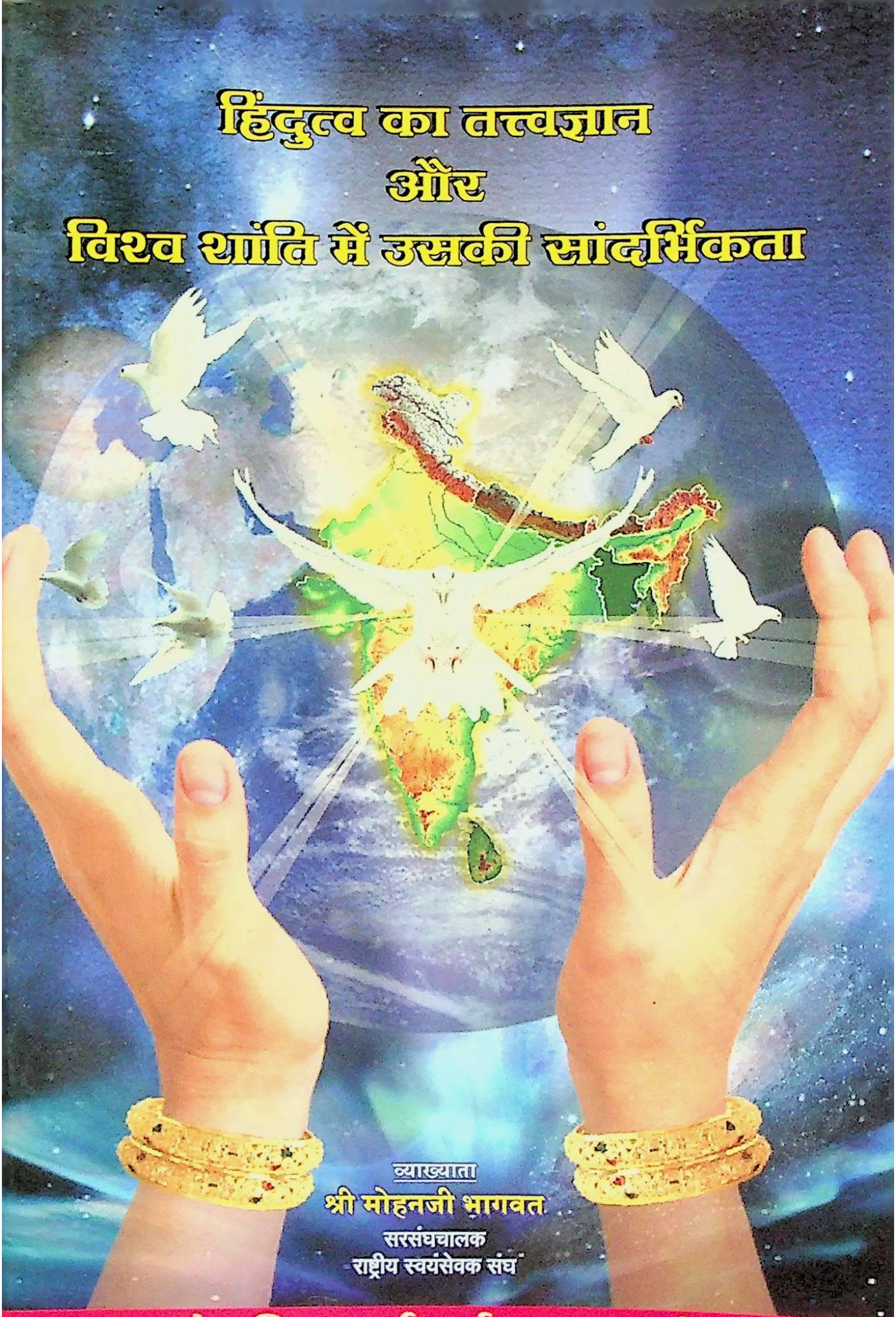

व्याख्याता

श्री मोहनजी भागवत

सरसंघचालक

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

तौलनिक धर्म दर्शन अकादमी

बेलगांव-कर्नाटक

हिंदुत्व का तत्त्वज्ञान और विश्व शांति में उसकी सांदर्भिकता

व्याखाता
श्री मोहनजी भागवत,
सरसंघचालक, रा.स्व.संघ.

तत्त्वावधान

तौलनिक धर्म दर्शन अकादमी, बेलगांव
गुरुदेव रानडे मंदिर, हिंदवाड़ी, बेलगांव–५९००११
दूरभाष : ०८३१ – २४६७२३१

(२८–०८–२०१०)

हिंदुत्त्व का तत्त्वज्ञान और विश्व शान्ति में उसकी सांदर्भिकता

A Lecture in Hindi by Shri. Mohanji Bhagwat, Sarasanghchalak, RSS.

Publishers	:	Academy of Comparative Philosophy and Religion Gurudeo Ranade Mandir, Hindwadi, BELGAUM - 590 011 (Karnataka) Bharat. Phone - (0831) 2467231
(c)	:	Publishers
Pages	:	32
Copies	:	1000
Paper Quality	:	Maplito 70GSM Cover page Art 220GCM
Transcription and DTP	:	Ashok Bhandari, Belgaum
Price	:	Rs. 50/-
Printers	:	Omega Offset 4574, Shetty Galli, Belgaum - 590 002 Ph. 0831-2424124, 2433429

प्रकाशकीय

'तौलनिक धर्म दर्शन अकादमी, बेलगांव' की प्रन्यासी मंडली को, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूजनीय सरसंघचालक श्री मोहनजी भागवत द्वारा दि. २८ अगस्त २०१० के दिन अकादमी के सभागृह में **"हिंदुत्व का तत्त्वज्ञान और विश्व शांति में उसकी सांदर्भिकता"** इस विषय पर दिए व्याख्यान की यह पुस्तिका प्रकाशित करते हुए अतीव हर्ष हो रहा है ।

अकांदमी की प्रन्यासी मंडली, विद्वज्जनों, सामाजिक चिंतकों, और गुरुदेव रानडे जी के अनुयायियों को लगा की श्री मोहनजी भागवत द्वारा संपन्न यह 'संबोधन' अकादमी के इतिहास में एक अत्यंत उद्‌बोधक एवं परम आनंद का क्षण है । अतः अकादमी ने संपूर्ण सहमति के साथ यह निश्चय किया कि उपरोक्त व्याख्यान को एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित व विमोचित किया जाए, ताकि इससे आसक्त लोग लाभान्वित हो सकें ।

अकादमी एक ऐसी वैश्विक दीर्घा है, जहाँ शाश्वतता सदैव गुनगुनाती रहेगी । अकादमी ईश्वर की संतानों में से **'प्रतिभाशाली समूह'** के मिलन का सार्वकालिक मंच है । प्रभु अपने द्वारा विनिर्मित **'प्रज्ञासंपन्न लोगों'** को सदैव जानते हैं; उनके लिए वे हँसते हैं और रोते हैं । भगवान इसलिए हँसते हैं; क्योंकि, वे उनके द्वारा प्रकटित सर्वोत्तम अभिव्यक्तियाँ हैं । वे इसलिए रोते हैं; क्योंकि, ये ही एक ऐसा समूह हैं, जो व्यवस्थात्मक नृशंस शासन तथा शोषण का निरंतर समर्थन करते हुए ईश्वरीय निर्मिति में से अधिकांश लोगों का जीवन दुःखी बनाते रहते हैं । कहा गया है कि बुद्धिशाली लोग दुधारी तलवार जैसे होते हैं । हर चीज को अमान्य करने की अपनी भयावह शक्ति के कारण, उसकी पैनी स्वार्थी धार हर वस्तु को – अच्छी व उदात्त चीज को भी काटते रहती है; जबकि, उसकी उदात्त, आध्यात्मिक धार मानव के विकसनार्थ उसे देवत्त्व की ओर ढकेलते रहती है ।

मानवता की भवितव्यात्मक समस्याओं की दैवी दूरदृष्टि ने श्री गुरुदेव को **'तौलनिक धर्म दर्शन अकादमी'** नामक इस संस्था के प्रकटीकरण का बीजारोपण करने के लिए उद्युक्त किया । इस

'परिप्रेक्ष्य' में, यह अकादमी याने मनुकुल के बच्चों की निरंतर पढ़ाई व बुद्धिशाली लोगों के प्रशिक्षण की पाठशाला हों, जिसके फलस्वरूप वे मानवी सह-अस्तित्व के वैश्विक आकृति-बंध में नेताओं, प्रवक्ताओं या प्रबंधकों के रूप में प्रतिस्थापित हो सकें । शेष जनसामान्यों के लिए, अकादमी याने सृष्टि की ज्ञात विविधताओं, विचारों, संप्रदायों, पंथों, संस्कृतियों, सभ्यताओं, दर्शनों, समाजों, राज्यशासनों और तत्सम सब बातों की विविधाताओं में दैवी एकता की जागृति का सिंचन करने वाला ज्ञान-मंदिर बन जाएं ।

नीतियों व ज्ञान के वर्तमान शासकीय ढाँचें में इस संस्था का कार्य उतना आसान नहीं है । मानवता के छोटे-छोटे टुकड़ें और विभाजित छावनियाँ यह सरलता से समझ नहीं पाएंगी कि छावनियाँ-रहित एकता की स्वतंत्रता में क्या सुख-संतोष होता है? इस धरती को कृत्रिम राष्ट्रों में विभाजित करने वाले संप्रदाय और सार्वभौमता की बाधाएँ उतनी आसानी से समाप्त होने वाली नहीं हैं । ईश्वर की विविधता में एकता का एक अनोखा सौंदर्य है; जबकि, मनुष्यनिर्मित छावनियों और विभाजनों में अपनी ही अप्राकृतिक छटाएँ या तनाव होता है । यदि प्रतिपादनार्थ तत्त्वज्ञान उदित होता है, तो संप्रदाय गायब हो जाएंगे; यदि प्रस्तुति के लिए आध्यात्म उदित होता है, तो तत्त्वज्ञान अदृश्य हो जाएगा; और यदि प्रभु ने इस अकादमी के जीवितकार्य को प्रतिपादित किया तो समूची मानवता के एकात्मिक कल्याण का उदय होगा ।

हम तो मर्त्य हैं, किन्तु जीवितकार्य व संस्था अमर हैं । हमारा व्यक्तिगत गौरव केवल एक रेतीले कण के रूप में होगा, जिसके आधार पर ईश्वर की क्षणभंगूर सृष्टि का परमोच्च ढाँचा मानवता कल्याण स्वरूपी दैवी आनंद के साथ स्थायी रूप में खड़ा होगा ।

मूल हिंदी व्याख्यान को पहले सांद्र मुद्रिका से लिपिबद्ध करते हुए, बाद में उसका अंग्रेजी अनुवाद कर उन दोनों की संगणकीय मुद्रण-प्रति तैयार कर देने वाले बेलगांव के श्री अशोक भंडारी के प्रति हम अपना कृतज्ञ भाव प्रकट करते हैं ।

जय श्री गुरुदेव!

– प्रन्यासी मंडली,
तौलनिक धर्म दर्शन अकादमी, बेलगांव

स्वागत व परिचय

मैं 'तौलनिक धर्म दर्शन अकादमी, बेलगांव' (अंग्रेजी नाम के आद्याक्षर ए.सी.पी.आर.) की ओर से, बेलगांव की जनता और यहाँ पर उपस्थित श्रोतृवृंद की ओर से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक मोहनजी भागवत इनका हार्दिक स्वागत करता हूँ। उनके साथ गुरुदेव डॉ. आर. डी. रानडे जी के अनुयायी व हमारे अध्यक्ष श्री अशोकजी सराफ का भी हृत्पूर्वक स्वागत करता हूँ। उन्हींके साथ मैं गुरुदेव के अनुयायियों, संवाददाताओं, बहनों, बंधुओं तथा यहाँ पर उपस्थित सम्माननीय श्रोताओं का भी स्वागत करता हूँ।

आज हमारे बीच उपस्थित श्री मोहनजी भागवत जैसे महान व्यक्तित्व का परिचय करा देना मेरा परम सौभाग्य मानता हूँ। १९५० में जन्में श्री मोहनजी मधुकर भागवत राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वर्तमान सरसंघचालक है। एक आधुनिक व व्यावहारिक दृष्टि के नेता इस नाते उनकी पहचान है। रा. स्व. संघ के अति युवा नेताओं में से वे एक है। मोहनजी भागवत का जन्म महाराष्ट्र के एक छोटेसे शहर चंद्रपुर में हुआ। उनके परिवार वाले भी संघकार्य में क्रियाशील हैं। उनके पिताजी, श्री मधुकरजी भागवत चंद्रपुर भाग के प्रमुख थे और उन्होंने गुजरात प्रांत के प्रचारक इस नाते काम किया है। श्री लाल कृष्ण आडवाणीजी को संघ में लाने का श्रेय श्री मधुकरजी को जाता है। इनके एक बंधु चंद्रपुर शहर के संघ कार्य के प्रमुख है। अपने तीन भाइयों व एक बहन के बीच मोहनजी सबसे बड़े है। मोहनजी भागवत ने अपनी शिक्षा चंद्रपुर के लोकमान्य तिलक विद्यालय और बी. एस्सी. का प्रथम वर्ष जनता महाविद्यालय में पूरा किया है। उन्होंने अकोला के पंजाबराव कृषी विद्यापीठ से पशुवैद्यक शास्त्र व पशुपालन विज्ञान में अपनी पदवी प्राप्त की। १९७५ के अंत में, जब पूरा देश आपात् कालीन अत्याचारों से जूझ रहा था, तब अपना पशुवैद्यक शास्त्र का स्नातकोत्तरीय अभ्यासक्रम अधुरा छोड़ कर, वे रा. स्व. संघ के पूर्णावधि प्रचारक बने।

मोहनजी भागवत की ओर एक नितांत धरातलीय नेता के रूप में देखा जाता है। आधुनिकता का स्पर्श कराते हुए, उन्होंने हिंदुत्व के

कार्य को आगे ले जाने की बात कही है । संगठन की जड़ों को अपने समृद्ध, प्राचीन भारतीय जीवनमूल्यों में अड़िग रखते हुए, परिवर्तनशील समय के साथ आगे जाने की आवश्यकता पर उन्होंने बल दिया है । 'संघ पुरानी बातों व रूढ़ीवादिता से चिपका रहता है' – इस सर्वसामान्य धारणा के विपरीत, आधुनिकीकरण का स्वीकार कर, इस महान देश की जनता को समुचित मार्गदर्शन करने हेतु संघ उसीके साथ विकसित–विस्तारित हो रहा है ।

अब, मैं आपको संस्थापक के संस्थागत इतिहास और **'तौलनिक धर्म दर्शन अकादमी' (ए.सी.पी.आर.)** की ओर ले जाना चाहूँगा । यहाँ पर उपस्थित आप सबको विदित है कि गुरुदेव डॉ. आर. डी. रानडे आधुनिक भारत के महानतम आध्यात्मिक संतों में से एक है । यह बताते हुए मुझे हर्ष होता है की सौभाग्य से, उनका जन्म वर्तमान बागलकोट जिला (कर्नाटक) स्थित जमखंडी में हुआ । वे एक विश्वमान्य दार्शनिक थे । औपनिषदिक तत्त्वज्ञान से भगवद्गीता तक, आत्मसाक्षात्कार कराने वाले तत्त्वज्ञानों का संरचनात्मक सर्वेक्षण करने वाले उनके दार्शनिक व साहित्यिक ग्रंथों ने अपने पीछे अपनी चिर स्मरणीय व वैभवपूर्ण पदचिह्न छोड़े है । वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कुलगुरु थे; साथ ही वहाँ के तत्त्वज्ञान प्रशाखा के प्राध्यापक, विभाग प्रमुख व विद्यामंडलीय अध्यक्ष भी थे । उनको विविधता–विभिन्नताओं में आध्यात्मिक एकता के संधारित जागरण के द्वारा अपने इस विश्वात्मक परिवार व समूची मानवता का पूर्णात्मक कल्याण करने का दर्शन एवं चिंता थी ।

१९२४ में जब वे तत्त्वज्ञान विषय के प्राध्यापक इस नाते पुणे में कार्यरत थे, तभी उन्होंने इस संस्था का वास्तविक शुभारंभ किया था । इस संस्था के द्वारा अपनी धरती पर स्थित समूची मानवता की आध्यात्मिक एकता के लिए काम करना, जिसके परिणाम स्वरूप संपूर्ण विश्व के बुद्धिजीवी, आध्यात्मिक प्रवृत्ति वाले लोगों को एकत्र लाकर शांति व सद्भावना प्रस्थापित करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था । डॉ. आर. डी. रानडे के अनुसार, उनके द्वारा स्थापित ए.सी.पी.आर. जैसी आंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के जरिए आध्यात्मिक एकता का दर्शन करा के आध्यात्मिक संप्रदायों की विभिन्नताओं को परिसीमित करने की उनकी मन्शा थी ।

१९२४ में पुणे में ए.सी.पी.आर. की संकल्पना का बीजारोपण होने के बाद, उसे १९५२ में विद्यमान ए.सी.पी.आर. बेलगांव के रूप में साकार करने के अपने जीवितकार्य के लिए उन्होंने निरंतर कार्य किया। इसके एकमेव 'संस्थापक प्रन्यासी' के नाते उन्होंने विद्यमान ए.सी.पी.आर. बेलगांव को एक वैश्विक अकादमी का स्वरूप प्रदान करने हेतु शिक्षा एवं अनुसंधानात्मक श्रेणि के एक सार्वजनिक धर्मादाय न्यास के रूप में पंजीकृत किया। उन्होंने ए.सी.पी.आर. बेलगांव इस संस्था को अपनी अमर विरासत के रूप में पूरे विश्व को समर्पित किया। इस महान संस्थापक का यही आशय था कि यह ए.सी.पी.आर. केवल उनके अपने अनुयायियों के आध्यात्मिक परिवार व अपने संप्रदाय तक ही सीमित न रखते हुए, समूचा मानव समुदाय इसका प्राधिकृत लाभार्थी बन जाएं।

ए.सी.पी.आर. बेलगांव ने अपने संस्थापक के इस शैक्षिक दर्शन को अक्षुण्ण रखा है और वह किसी पांथिक या सांप्रदायिक मठ, आश्रम या मंदिर में सिकूड़ जाने के बजाय अपने वैश्विक संदर्भ में सतत प्रवर्धमान रहा है। गुरुदेव डॉ. आर. डी. रानडे जी आधुनिक काल के एक महानतम आध्यात्मिक समाजोद्धारक रहे हैं। ए.सी.पी.आर. बेलगांव के महान आद्य प्रवर्तक और उनके दर्शन को समुचित आदरांजलि समर्पित करने के लिए भारत के तत्कालीन राजर्षि राष्ट्रपति डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने १९६५ में, याने संस्थापक के देहावसान के आठ वर्ष बाद, ए.सी.पी.आर. के इस भवन के उद्घाटन करने में गर्व का अनुभव किया था। १९५७ में गुरुदेव डॉ. आर. डी. रानडे ने दिव्य लोक की ओर प्रस्थान किया और उनकी समाधी बिजापूर जिला (कर्नाटक) के निंबाल ग्राम में स्थापित की गयी है।

"एक ईश्वर, एक विश्व, एक मानवता" यह इस संस्था का घोषवाक्य है। गुरुदेव डॉ. आर. डी. रानडे जी अपने तर्कबद्ध आध्यात्म व तत्त्वज्ञान के सैद्धांतिक समन्वयन तथा इस विशिष्ट विश्व के सभी तत्त्वज्ञानों, सभी धर्मों, सभी मत–पंथों, सभी संप्रदायों के तुलनात्मक अध्ययन के कारण समूचे विश्व में सदैव ख्यात थे। वे हमेशा एक बात कहा करते थे : "भगवान द्वारा विनिर्मित एक बच्चा जैसा नामविहीन

व पंथविहीन होता है, वैसेही भगवान भी नामविरहित व संप्रदायविरहित होते है ।"

ए.सी.पी.आर याने आधुनिक प्रेषित गुरुदेव डॉ. आर. डी. रानडे द्वारा एकता जागरण के लिए दी हुयी 'वैश्विक पुकार' है । मानवता ही एक नया पंथ है; तर्कबद्ध आध्यात्म ही इन विविधताओं का प्रबंधन करने की और शांतिपूर्ण व आनंदयुत मानवी सहजीवन के संघर्षशून्य एकता की नयी लौकिक भाषा है । श्रद्धा अपनी तर्कशुद्ध आध्यात्मिक भाषा में बुद्धिवाद के साथ सहयोग करती है; विश्व में स्थित इस जगत् रूपी ग्राम का भूगोल, दैवी सृजन का भौतिकशास्त्र, वैश्विक समाजों का जैवशास्त्र, राष्ट्र–संकुल का प्राणीशास्त्र, आत्मशोधक संप्रदायों का रसायनशास्त्र..... इतना ही नहीं, समूची दैवी सृष्टि का पर्यावरणीय–न्यायशास्त्र, शांति में जीने व संवर्धित होने की दैवी कला जैसे वैश्विक ज्ञान के नये–नये विषय उनके निरंतर अद्यतन रूप में मानवता को सिखाते रहना ही इस विशिष्ट संस्था का मुख्य उद्देश्य है ।

मैं फिर एक बार सभी अभिजनों का एवं आज के सम्माननीय अतिथी श्री मोहनजी भागवत, हमारे अध्यक्ष श्री अशोकजी सराफ तथा यहाँ पर उपस्थित महनीय श्रोतृवृंद का प्यारभरा स्वागत करता हूँ।

जय श्री गुरुदेव !

अधिवक्ता एम. बी. जिरली,
कार्यदर्शी,
तौलनिक धर्म दर्शन अकादमी, बेलगांव

हिंदुत्व का तत्त्वज्ञान और विश्व शांति में उसकी सांदर्भिकता

– श्री मोहनजी भागवत,
सरसंघचालक, रा.स्व.संघ.

संस्था के और आज के कार्यक्रम के अध्यक्ष
आदरणीय श्री अशोक सराफ जी,
अन्य सभी कार्यकर्ता बंधु गण,
नागरिक सज्जन एवं माता–भगिनी,

आप सबकी अनुमति गृहित मान कर, मैं हिंदी में बोल रहा हूँ। अंग्रेजी में मैं बोल सकता हूँ; परंतु जो विषय है, उस विषय की पूर्ण अभिव्यक्ति अंग्रेजी में नहीं हो सकती । दूसरी बात, मैं पहले ही आपकी क्षमायाचना कर लेता हूँ । क्योंकि, इस विषय पर बोलने का काम वास्तविक श्री गुरुदेव जैसे अधिकारी पुरुषों का है, जिन्होंने इस विषयवस्तु के तत्त्व को आपके सामने सतत साक्षात, जैसा मैं आपको देख रहा हूँ और आप मुझे देख रहे हो, वैसा देखने का स्तर हस्तगत किया था । परंतु, हम विज्ञान सिखाते हैं, विज्ञान अपने घर में बोलते हैं, तो विज्ञान के सब प्रयोग हमने कर के देखे नहीं हैं । वैज्ञानिकों को अपना आप्त मान कर, आप्तवचन प्रमाण मान कर, हम चर्चा करते हैं । अनुभूति नहीं रहती, लेकिन श्रद्धा रहती है । वैसे, इस विषय में मेरा स्वयं का अनुभव तो इस विषय के लिए पूरा पडने वाला नहीं है । लेकिन, जिनका पूरा पड़ा है, उनके विचारों के आधार पर ही उसकी चर्चा आपके सामने करूंगा । अर्थात्, कहने में थोड़ा इधर–उधर हो सकता है, त्रुटि रह सकती है । तो त्रुटि मेरी है, उन विचारों की नहीं है । क्योंकि, वे विचार मेरे नहीं हैं; श्री गुरुदेव जैसे अनेक विभूतियों के प्रत्यक्ष अनुभूत विचार हैं ।

'हिंदु तत्त्वज्ञान का, अंग्रेजी में **'Hinduism'** कहा है, उसका महत्त्व क्या है? **विश्व शांति के संदर्भ में उसकी सुसंदर्भितता क्या है?"** यह विषय मुझे दिया गया है । कुछ बातें, मैं विषय शुरु करने के पहले और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ : **'Hinduism'** यह शब्द गलत

है । **'ism'** याने एक बंद तत्त्वज्ञान होता है, जिसमें सुधार की या प्रगति की गुंजाईश नहीं होती । उसको मानो, या मत मानो; उसमें से जो सारभूत है, वह ग्रहण कर के उसके आधार पर और आगे जाना, इसकी गुंजाईश नहीं है । इसलिए जहाँ **'ism'** आता है, वहाँ अभिनिवेश आता है । विचार के दरवाजे बंद हो जाते हैं । **'हिंदुत्व'** है; **'Hinduism'** नहीं है । क्योंकि, इसमें सतत सुधार की, सतत आगे जाने की गुंजाईश है । गांधीजी ने यह कहा है : **"हिंदुत्व सत्य की सतत व सनातन खोज का नाम है"** और इसीलिए, मैं जब हिंदु तत्त्वज्ञान के संदर्भ में शब्दों का उपयोग करता हूँ, तो अंग्रेजी में **'Hinduness'** कहता हूँ; **'Hinduism'** नहीं कहता हूँ । दूसरी बात है, कि ऐसे शब्दों के बहुत घोटाले होते हैं । दुर्भाग्य से ऐसा समय भी आया, जब हमको अपनी बातों को विदेशी भाषा में बोलना पड़ा । उसमें दिक्कत नहीं है । किसी भी भाषा में सत्य कहा जा सकता है । परंतु, भाषा का अपना सामर्थ्य होता है । भाषा की अपने भाव की पृष्ठभूमि होती है। वह अलग–अलग है । इसीलिए जब हम 'धर्म' कहते हैं, या जब मैं मेरे भाषण में 'धर्म' कहूँगा, तो उसका अर्थ 'Religion' नहीं है । क्या है, वह मेरे भाषण में स्पष्ट हो जाएगा । अब, हम विषय को प्रारंभ करते हैं ।

विश्व–शांति की खोज सनातन है और आधुनिक विश्व के इतिहास के समय से अभी तक देखें, तो वह खोज अभी पूरी नहीं हुयी है । कभी–कभी लगता है कि यह खोज एक मृगमरीचिका की ही खोज होगी । क्योंकि, महापुरुषों की अनुभूति कहती है कि शांति तब तक नहीं आ सकती, जब तक सुख नहीं है; और सुख तब तक नहीं आता, जब तक शांति नहीं है । तो अंग्रेजी में जिसको **'catch twenty-two situation'** कहते हैं, ऐसी यह परिस्थिति है, जहाँ एक पूरा होने के बगैर दूसरा पूरा नहीं होता; और दूसरा पूरा होने के लिए वह पहला पूरा होना आवश्यक है । दुनिया इस दौड़ में फँसी है ।

आधुनिक दुनिया, जिसको 'European Renaissance' कहती हैं, यूरोप के उस पुनरुत्थान से इस दुनिया का आधुनिक युग प्रारंभ हुआ, ऐसी सर्वदूर मान्यता है । तब से अब तक, या उसके भी पहले से, मनुष्य मात्र को सुख प्राप्त हो और इसलिए विश्व में एकता और

शांति प्रस्थापित हो – इसके अनेक प्रयोग हो चुके हैं। लेकिन, उनमें किसीको पूर्ण यश मिला नहीं है और इसलिए अब दुनिया विचार कर रही है कि 'भारत के सनातन तत्त्वज्ञान की ओर जाना चाहिए। उसके आधार पर कुछ कर के देखना चाहिए।' ऐसा क्यों हुआ? **बिना सुख के शांति नहीं, तो सुख खोजो।**

सुख खोजना है याने अर्थ और काम के पीछे लगना है। जीवन में यह आवश्यक है। पशु और मनुष्य के जीवन में यही तो समानता है। *आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतद् पशुभिः नराणाम्।* तो किसी भी सामान्य व्यक्ति की जैसी होती है, वैसी दुनिया की सुख और शांति की खोज भी, अर्थ और काम के पीछे लगी दौड़ से प्रारंभ हुयी है। बिलकुल, आधुनिक इतिहास का प्रारंभ बिंदु देखते हैं, तो मनुष्य की शिकार करने वाली अवस्था समाप्त हुयी और कृषि कर के वह एक जगह स्थायी होने लगा, तब उसके ध्यान में आया कि शिकार के समय कबिले और उसका प्रमुख – उसके अनुशासन में रहना, यह रचना तो ठीक थी। लेकिन, अब स्थायी होंगे, तो यह नहीं चलेगा। तो फिर ऐसे अनेक कबिलों ने एकत्र आना शुरु किया। क्योंकि, किसी कबिले का कौशल्य कृषिशास्त्र में था, किसीका यंत्रशास्त्र में था, किसीका पशुपालन में था; और इन सबकी आवश्यकता कृषि को होती है, तो ये सब एकत्रित आ गएं। उसमें से ग्राम बना। अब ग्राम में इतने सारे कबिले हैं, तो किसको प्रमुख करना? जो कबिला–प्रमुख होगा, वह बाकी कबिले के लोगों को दबाएगा। यह अनुभव आने के बाद, ऐसे ग्रामों ने मिल कर समिति बनायी और एक राजा बनाया और राजा के आज्ञानुसार सब लोगों ने चलना। उससे सब अच्छा होगा, ऐसा सोचा। राजा बन गया। कुछ दिन अच्छा भी चला।

लेकिन, राजा भी मनुष्य ही था। तो उसको भी काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर – सारे षड्विकार थे। वे जब प्रभावी हो गएं, उस समय कुछ महापुरुष ऐसे निकलें, जिन्होंने कहा कि "राजा की सत्ता क्या है? वह नश्वर सत्ता है। वह राजा के साथ समाप्त होती है। उसको पलटा भी जा सकता है। दुनिया तो भगवान की सत्ता में चलती है। भगवान राजाओं से ऊपर है; राजाओं का राजा है; The

King of Kings – उसका मान कर जो चलेंगे, उन राजाओं को हम मानेंगे ।" भगवान या ईश्वर एक ऐसी कल्पना है कि जिसमें सारी उदात्तता, सारी सज्जनता निहित है और उसको दुनिया का शासक बनाया । वह "अच्छों को पुरस्कार देना, और बुरों को दंड देने का काम करता है और उसकी सत्ता का उल्लंघन कोई कर नहीं सकता; उसकी मान कर चलो; राजाओं से डरो मत" – ऐसा कहने वाले लोग हो गएं; लोगों ने उनकी मानी; राजाओं की गुलामी से मुक्ति पा ली । कुछ राजा इस बात को मान कर अपने आप को ठीक करने का प्रयास करने लगें । तो राजाओं की सत्ता के साथ एक नियामक **'धर्मसत्ता'** उत्पन्न हो गयी और कुछ समय बहुत अच्छा चला ।

लेकिन, अब ये जो धर्मसत्ता है, वह जब तक साक्षात्कारी पुरुषों की होती है, तब तक ठीक है । बाद में, जब जिन्हें साक्षात्कार नहीं, अनुभूति नहीं, वे **'धर्मसत्ता'** के **'धर्म'** को भूल जाते हैं; **'सत्ता'** ध्यान में रखते हैं । ऐसा कई बार होता है । ऐसा हुआ और फिर **राजसत्ता और धर्मसत्ता का गठबंधन हो गया; और उन्होंने दुनिया को लूटना प्रारंभ किया ।** यूरोप के इतिहास में ऐसा समय भी बीता है, जब सब राजा, जागीरदार वगैरे प्रजा का शोषण करने वाले, लूटने वाले लोग बिशप्स के पास जाकर, धर्माचार्यों के पास जाकर, अपने पापों का मुआवजा देकर स्वर्ग में seat का reservation करते थें । यह हुआ है । यह इतिहास में लिखा है । जैसे हम आजकल train का आरक्षण करते हैं; वैसे पैसे देकर स्वर्ग में seat का आरक्षण होता था और पैसे वाले लोग स्वर्ग में भी seat आरक्षित कर लेते थें, फिर यहाँ चाहे जितने पाप करो; कोई चिंता नहीं । फिर से प्रजा बेसहारा बन गयी । इसमें से समाज में जो क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ चलीं, उसमें संयोग से विचारवान लोगों के अन्वेषणों के कारण, प्रजा के हाथ में एक नया अस्त्र आया । उसका नाम है **'विज्ञान'** ।

Rational ऐसा शब्द, हम गुरुदेव के संदर्भ में जब-जब बात करतें है, तो बार-बार आता है कि हर बात का तर्क बताओ; हर बात का सबूत बताओ; प्रमाण बताओ । बिना सबूत, बिना तर्क के, किसी बात को नहीं मानेंगे । वैज्ञानिक तो कहते थे कि ईश्वर अगर है, तो उसको हमारे test tube में आना पड़ेगा; तभी उसको मानेंगे । प्रजा

को एक तर्कयुक्त विचार करने वाला सामान्य मनुष्य बनाने में इसका बहुत योगदान है और उसके कारण, अंधश्रद्धाओं से और जुलुमी राजाओं के जाल से प्रजा छूट गयी। दुनिया का विकास हुआ, सुख के अनेक भौतिक साधन सबको उपलब्ध हुएं। पहले, जीवन जीने में जितना कष्ट होता था, लोगों का वह कष्ट समाप्त हो गया। 'अर्थ' में याने 'सुख के साधनों' में बड़ी प्रगति हुयी।

लेकिन, आगे चल कर ऐसा हुआ, जो बली लोग थे, धनबल–सत्ताबल में आगे थे, उन्होंने इन सब साधनों को अपने हाथ में केंद्रित करना शुरु कर दिया और उनके सुख के लिए श्रम करने वाले बाकी सब श्रमिक बन गएं। शोषण शुरु हो गया। मनुष्य ही मनुष्य का शोषण करने लगा। उसकी प्रतिक्रिया में से **'साम्यवाद'** आया। उन्होंने कहा : "थोड़ेसे मुठ्ठी भर लोग सुख के साधन हाथ में लेकर और वास्तव में जिनके श्रम के कारण वे साधन उपलब्ध होते हैं, उनके श्रम का अनादर करते हुए ये शोषण करते हैं। यह नहीं चलेगा। जो निरीह लोग हैं, **जो have-nots हैं, उनकी हुकुमशाही जगत् में लाएंगे और जिसको जितनी आवश्यकता है, उतना उसको देंगे; और जिसकी जितनी क्षमता है, उतना उससे काम लेंगे।** व्यक्ति क्या है? हम सभी व्यक्ति समाज नामक एक बड़े यंत्र के पुर्जे हैं। यह समाज महत्त्व का है, व्यक्ति का कोई स्थान नहीं है। परिवार का कोई स्थान नहीं है। अपनी निजी property वगैराह झूठी कल्पनाएँ हैं। धर्म वगैराह अफ़ीम की गोली है।" बड़ी क्रांति हो गयी। सारी दुनिया को एक नयी आशा की रोषनी मिली और उसका भी प्रयोग हुआ।

लेकिन, ७० साल में वह प्रयोग भी अयशस्वी हो गया। यह देखा गया कि **'सर्वहारा की तानाशाही' के नाम पर वह 'एक पार्टी की तानाशाही'** हो जाती है और पार्टी में भी जो समर्थ group है, उसकी तानाशाही हो जाती है। वे लोग सत्ता का अपने सुख के लिए उपयोग करते हैं। **जो 'सर्वहारा' हैं, वे 'सर्वहारा' ही रहते हैं।** अपने सुख के साधन, बिना किसी कठिनाई से उपलब्ध हो जाए, इसीलिए जहाँ दो वर्गों की कल्पना की हैं, वहाँ वे **नौकरशाहों व वैज्ञानिकों का एक तीसरा वर्ग उत्पन्न करते हैं।** इसीलिए बीस साल पहले उस प्रतिक्रिया में से दुनिया वापस, जिसको आधुनिकोत्तर पूंजीवाद कहते हैं, post-

modern capitalism कहते हैं, उसकी ओर बड़ी जोर से दौड़ी। लेकिन, अब वह भी ध्वस्त हो रहा है। उसमें भी कैसा शोषण होता है, यह सबके ध्यान में आ रहा है। गत २००० वर्ष सुख के पीछे आदमी दौड़ता रहा, घड़ी के लंबक के समान इधर से उधर, उधर से इधर, इधर से उधर, इतना ही उसके हाथ में लगा। उसका ध्यान भारत की ओर नहीं था।

भारत की आत्मविस्मृति का यही कालखंड है भगवान बुद्ध की सीख के विस्मरण के पश्चात्, सामान्य समाज आत्मविस्मृत होकर जीने लगा। उसका परिणाम देश के सामर्थ्य पर हुआ। देश में विघटन आया। ये सारी बातें हुयीं। भारत की प्रतिष्ठा नीचे-नीचे जाने लगी। इसलिए भारत यह विचार करने लायक देश है, ऐसा दुनिया ने अभी तक पूर्णतः तो नहीं माना है। हमारी स्वतंत्रता के बाद, अब थोड़ा-थोड़ा मानने लगी है। उसके पहले ध्यान नहीं था। अब उसका ध्यान जाने लगा है और इसलिए वे कहते हैं कि "यहाँ के परिवार का अध्ययन करना चाहिए। इतना बड़ा देश और इतनी अनपढ़ प्रजा होने के बाद भी सब प्रकार की परीक्षाओं में से जाकर, यहाँ का प्रजातंत्र कैसे सुरक्षित रहता है? इसका अध्ययन करना चाहिए।" तो दुनिया का ध्यान भारत की ओर गया है। भारत के पास ऐसा क्या है, जो वह दुनिया को आज दे सकता है? इसके लिए भी हमको थोड़ा भारत का इतिहास भी देखना पड़ेगा।

एक बात सबको समझ में आती है और समझ में आकर भी वह कभी कृति में नहीं आती है। सुख के पीछे हम दौड़ते हैं। सुख के पीछे दौड़ते हैं याने पदार्थों के पीछे दौड़ते हैं। मुझे सुख चाहिए, तो वह कैसे मिलेगा? सिनेमा देखने से मिलेगा, रसगुल्ला खाने से मिलेगा, टी.वी. घर में आने से मिलेगा, घर में A.C. लगाने से मिलेगा। किन्तु, सामान्य अर्थशास्त्र का नियम कहता है कि सुख देने वाली चीज, ये **जो बाहरी चीजें हैं, उनसे सुख मिलने की मात्रा उनके अधिक उपयोग या अधिक उपलब्धि से कम हो जाती है। अर्थशास्त्र में इसको Law of Diminishing Utility कहते हैं।** एक रसगुल्ला खाएंगे, सुख हुआ। पाँच खाएंगे सुख होगा। दस खाएंगे, सुख होगा। ऐसे भी खाने वाले हैं, जो सौ-सौ खा जाते हैं, उनको सुख होता है।

लेकिन, इतने रसगुल्ले खाने के बाद एक अवस्था आती है, जब वह रसगुल्ला हमारे सामने लाया जाता है, तो हम कहते हैं, "नहीं चाहिए!" फिर भी अगर कोई आग्रह करता है, तो और खा लेते है । फिर 'रसगुल्ला सामने नहीं दिखना चाहिए' ऐसा लगने लगता है । और फिर भी जबरदस्ती अगर मुँह में डाला, तो वमन होकर वह बाहर निकलता है । रसगुल्ला वही है । हम उसमें सुख है ऐसा मान कर उसको खा रहे थें । वह रसगुल्ला बदला नहीं है । ऐसे कैसे हो सकता है कि सौ रसगुल्लों के पहले उसमें सुख था; सौ रसगुल्लों के बाद उसमें सुख नहीं है? रसगुल्ला तो वही है । इसका मतलब यह है कि **सुख बाहर नहीं है, सुख अपने अंदर है । भारतवर्ष की दुनिया को यह पहली देन है ।**

सारी दुनिया इसको मानती है । जब इसे बोला जाता है, तब इसको 'ना' कहने वाला कोई नहीं है । लेकिन इसको करने वाले मिलते नहीं । भारतवर्ष में इसको कर के देखा गया है । और इसलिए आपने वह किताब पढ़ी होगी **'The Monk, who sold his Ferrari'**। फेरारी यह एक अत्युत्तम कार है और कहानी एक अमेरिका के Management Expert की है । उसने बहुत पैसा कमाया, लेकिन बहुत तनाव बढ़ा । जीवन में स्वयं के लिए समय नहीं रहा, इतनी भागदौड़ करनी पड़ी । तो वह गायब हो जाता है । किसीको पता नहीं चलता कि 'कहाँ है? कहाँ है?' और बीस वर्षों के बाद वह भगवे कपड़े पहन कर अपने एक मित्र के घर मिलने के लिए आता है; तो मित्र उसको पूछता है, "कैसे आए तुम?" "पैदल आया ।" "तुम्हारी फेरारी थी, उसका क्या हुआ?" "वह मैंने बेच डाली ।" "बेच डाली?" "हाँ, बेच डाली ।" "अरे तो, कैसे तुम जी रहे हो?" "पहले से सुखी हूँ ।" – ये पूरी कहानी जो लिखी है, उसमें यही दिखाया गया है कि असली सुख पाने के लिए वह गया हिमालय में । वहाँ योगियों के सानिध्य में रहा, तब उसके समझ में आया कि बाहर के पदार्थों में सुख खोजना बेकार है । सुख तो अपने अंदर है ।

हमने इसको कर के देखा है; और करने वाले आज भी हैं । इसको प्रत्यक्ष अपने जीवन में आचरण कर के आसानी से दिखाने वाले आज भी हैं । उतनी मात्रा में बाहर नहीं हैं । बाहर भी हैं । किंतु, उतनी मात्रा में नहीं है; और ऐसा करने वाले बाहर के लोग कभी न

कभी कम से कम भारतीय विचार के संपर्क में तो आ ही चुके हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि भारत की यह पहली देन है दुनिया को कि 'अर्थ और काम के पीछे भाग कर सुख नहीं मिलेगा।' क्योंकि, 'काम की तृप्ति कभी होती नहीं' यह दूसरी बात है। अर्थ निरर्थक हो जाते हैं और काम की तृप्ति कभी होती नहीं। आग में घी डालने जैसा काम का उपभोग काम को और भड़काने का काम करता है। तृष्णा बढ़ते ही चली जाती है। ***भोगा न भुड्क्ता वयमेव भुड्क्ता।*** ऐसी हालत हो जाती है। इन दो बातों को भारत में अनुभूत किया गया। केवल भारत में ही अनुभूत नहीं किया; सारी दुनिया ने अनुभूत किया। इसलिए **अपने अंदर सुख की खोज करने वाली तीसरी बात 'मोक्ष' की है।**

चार पुरुषार्थ है न? अर्थ–काम तो वैसे ही सबको मालूम हैं। क्योंकि, वे पशु को भी मालूम है। ***सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणां।*** लेकिन, मनुष्य अंतर्मुख हुआ। सुख बाहर नहीं मिलता; तो अंदर मिलेगा, खोजो। तो इस सुख की खोज, मोक्ष की खोज दुनिया के सब देशों में हुयी है और सभी जगह इसकी साधनाएँ हुयी हैं। अंतिम सत्य के अनुभूति के वर्णन दुनिया के सभी देशों के संप्रदायों में, जिसको मैं कहता हूँ Religions, उनमें मिलते हैं और वह एक ही है। अभी यहाँ भारत में अनुभूति के सिवाय कोई बात बोली नहीं जाती है। हमारे यहाँ हमारे संतों ने प्रत्येक Religion की साधना कर के देख लिया है। रामकृष्ण परमहंस ने इस्लाम की, ईसाइयत की प्रत्यक्ष उपासना कर के, वहाँ पर वर्णित उस पंथ–संप्रदाय की अंतिम अनुभूति का साक्षात्कार कर लिया और सारी दुनिया को बताया कि सब लोग एक ही जगह जाते हैं। भारत के लिए यह बात मुखौटा नहीं है; बताने की बात नहीं है। भारत के लिए यह भारत के अनुभूति की बात है और यह सबसे पहले भारत ने किया। कैसे?

श्री गुरुदेव ने वर्णन किया है। छांदोग्य उपनिषद में एक कथा आती है। मैं मेरे शब्दों में वही कथा आपको बताता हूँ। भौतिक उन्नत्ति के सर्वोच्च शिखर पर जाने के बाद देव और असुर, जो वास्तव में भाई–भाई थे; एक ही समाज था; उनके नेता इंद्र और विरोचन – इनको लगा कि अर्थ–काम तो सब मिल गएं; परंतु सुख–

समाधान तो नहीं मिल रहा है । तो दोनों ने बृहस्पति और शुक्राचार्य को पाचारण किया और पूछा : "अब बताइए, समाधान–शांति के लिए हमें क्या करना चाहिए?" तो दोनों ने कहा : "एक ब्रह्माजी हैं । उनके पास आत्मविद्या है । वह आत्मा ऐसी चीज़ है कि उसको प्राप्त करने के बाद कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रहता; शाश्वत और चिरंतन सुख की प्राप्ति होती है । तो ब्रह्माजी के पास 'शिष्य भाव' से जाओ और आत्मविद्या सीख लो ।" दोनों वल्कल पहन कर, हाथ में समिधा धारण कर के, ब्रह्माजी को अपने गुरु मान कर, उनके सामने गएं । उनको साष्टांग प्रणिपात किया । समिधाएँ अर्पित की; फल–श्रीफल अर्पण किया । तो ब्रह्माजी ने पूछा कि "कैसे आएं?" बोले कि "आपके पास आत्मविद्या है; हमको सीखने की इच्छा है" । गुरु तो मुमुक्षु को ज्ञान देते ही है । लेकिन, उस समय सीधा ज्ञान देने की पद्धति नहीं थी । ज्ञान देने की पद्धति में शिष्य की परीक्षा लेना और जितनी उसकी योग्यता है, उतना बताना । यह शिक्षा पद्धति किसी भी मामले में सबसे कारगर है । सब लोग ऐसा ही करते हैं । तो ब्रह्माजी ने उनको कहा कि "अरे भाई, यह आत्मा देखना तो आसान बात है।" "आँखों से दिखता है?" तो बोले, "हाँ, आँखों से दिखता है ।" "तो कौन देखता है?" "तुम्हारे आँखों में जो देखने वाला बैठा है, वही आत्मा है । उसको देख लो । मैंने पता बता दिया ।"

तो विरोचन और इंद्र एक–दूसरे के सामने खड़े हो गएं । विरोचन ने इंद्र की आँखों में झाँका, इंद्र ने विरोचन की आँखों में देखा । जब एक–दूसरे की आँखों में देखते हैं, तो स्वयं का प्रतिबिंब दिखता है । तो इंद्र को उसका प्रतिबिंब दिखा, और विरोचन को इंद्र की आँखों में स्वयं का प्रतिबिंब दिखा । तब दोनों ने मान लिया कि यह तो आसान बात है कि हाड़–माँस का मैं ही दिख रहा हूँ । इसका मतलब, ब्रह्माजी यह बता रहे हैं कि तुम ही हो, जो कुछ हो । ये शरीर–मन–बुद्धि मिल कर यह जो देह दिखती है, यह जो मनुष्य दिखता है, यह जो व्यक्ति, हम जिसको गलती से व्यक्ति कहते हैं, व्यक्ति तो अंदर का अभिव्यक्त होना है; लेकिन, हम तो person को व्यक्ति कहते हैं । तो यह जो दिखता है, persona, यही सब कुछ है।

दोनों निकले वापस आनंद में । रात हो गयी । एक तालाब के किनारे रुकें । सुबह दाँतून कर रहे थें; दाँतून करते–करते इंद्र तालाब

के पानी में अपना प्रतिबिंब देख रहा था । 'यही आत्मा है ।' इतने में ऊपर से एक फल टपका । जल में तरंगें उठीं, प्रतिबिंब नष्ट हो गया। इंद्र सावधान हो गया : 'आत्मा तो अमर है, शाश्वत है; और यह तो एक फल टपकने से नष्ट हो गया । तो जरूर कुछ गड़बड़ है ।' उसने विरोचन को कहा : "भैय्या, वापस चलो; फिर से पूछते हैं ।" विरोचन ने कहा, "फिर से पूछने की कोई जरूरत नहीं है । मैं तो पहले ही अनुभूति करता था कि अगर होगा कोई भगवान ***'उधर आसमाँ पे ख़ुदा और जमीं पे हम हैं ।'*** और इसीलिए अपने को इतना ही बस है; कि 'मैं ही आत्मा हूँ । मैं जितना बलशाली हूँ, उतना मैं सबको सुखी बना सकता हूँ । मुझे अपने को सुख में रखना है; शक्ति के सर्वोच्च स्तर पर रखना है और सारी दुनिया को मेरी इच्छा के अनुसार चलाना है।" विरोचन वहीं से वापस गया । इंद्र वापस नहीं गया; वह ब्रह्माजी की तरफ गया । उन्होंने और प्रश्न पूछे । ऐसी परीक्षा देते–देते इंद्र को आत्मा की प्राप्ति हो गयी । वहाँ से जो दैवी संस्कृति, देव संस्कृति निकली, वह हमारी संस्कृति है । बाकी जो जगत् है, केवल अर्थ–काम नहीं; वहाँ मोक्ष भी है ।

लेकिन, जनसाधारण में मोक्ष का उपयोग क्या है? हमारे यहाँ रिक्षा चलाने वाला है, खेती करने वाला किसान है, उनको पूछो : "मुक्ति किस लिए है?" वे कहेंगे : "मुक्ति के बाद भौतिक दुनिया का प्रयोजन नहीं रहता । बिना सुखोपभोगों के ही मनुष्य सुखी हो जाता है । वह सुखोपभोगों की इच्छा के परे हो जाता है ।" उधर जाकर सामान्य व्यक्ति को पूछो: "क्यों स्वर्ग में जाना है? Judgement Day के बाद, भगवान आपको अपने पास बुलाएगा, तो फायदा क्या है?" तो सामान्य व्यक्ति यह कहेगा; शायद चिंतक दूसरा उत्तर देंगे; लेकिन सामान्य व्यक्ति की धारणा यह है : "वहाँ शाश्वत सुखोपभोग मिलता है और सुखोपभोगों की रुचि कायम रखने के लिए शरीर भी अनंत काल तक तरुण रहता है ।" याने 'मोक्ष प्राप्त कर के करना क्या है?' तो **"कभी भी खट्टे न होने वाले फल, भरपेट खाने के बाद भी पेट नहीं बिगड़ेगा ऐसी प्रकृति, सुंदर–सुंदर अप्सराएँ और उनका उपभोग लेने के लिए सदा सक्षम रहने वाला शरीर" – यह उनकी मुक्ति की कल्पना है ।** 'मुक्ति' की है नहीं; 'मोक्ष' यह अपना शब्द है । वहाँ भी

salvation कहते हैं । लेकिन, मुझे लगता है कि **salvation** भी वे **solution** इस अर्थ में कहते होंगे । **Solution of all problems.** कभी खत्म न होने वाले भौतिक पदार्थ उपलब्ध है; कभी खत्म न होने वाली शरीर की उपभोग शक्ति अपने पास है । इसके लिए मोक्ष चाहिए । **यह 'विरोचन प्रवृत्ति' है ।**

हमारे यहाँ यह समझा गया कि इन सब बातों से परे जाना पड़ेगा । उसके सिवा बात नहीं बनेगी और यह केवल समझा गया, सोचा नहीं गया; तो उसके लिए प्रयास किए गएं । यदि मनुष्य अगर अर्थ–काम तक ही आकर रुक जाता है; तो वह पशु ही रह जाता है; तमोगुण में रहता है । ***आहार निद्रा भय मैथुनं च ।*** पशु का ऐसा ही है। उसको जन्म क्यों मिला? – यह मालूम नहीं । मरना कब है? – मालूम नहीं । आत्महत्या करने की बुद्धि नहीं । उसको तो जन्म और मरण के बीच जीना ही है । तो जब भूख लगती है, खा लेता है । अपनी जैसी–जैसी नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है, वैसा करता है । मृत्यू आती है, तब बिना चिल्लाए मर जाता है । पर, मनुष्य मोक्ष के पीछे जाता है । वह विचार करता है । वह अंतर्मुख होता है । वह इससे आगे जाने का प्रयास करता है । लेकिन, आगे जाने के बाद भी अगर वह उपभोग को ही अपना जीवन–साफल्य मानता है, तो फिर उसको सुख नहीं प्राप्त होता ।

धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष में से अर्थ–काम–मोक्ष ये सबके पास है । लेकिन, हमारे यहाँ और एक बात हुयी । बात यह हुयी । पता नहीं, क्यों प्राचीन समय से ही हम लोगों के स्वभाव में सबके सुखी होने का विचार करने की प्रवृत्ति थी? केवल स्वयं के सुखी होने का विचार करने की प्रवृत्ति नहीं थी । यह मनुष्यता है । अपनी भूख तृप्त होने के बाद, पशु को कभी घास की गठ्ठर बना कर अपने घर ले जाने की बुद्धि नहीं होती । उसके बाद, किसीने घास खाया, नहीं खाया, इसकी परवाह नहीं । कल के लिए गठ्ठर बाँध कर वह नहीं ले जाता; मनुष्य ले जाता है । मनुष्य 'स्वार्थी' भी हो सकता है; मनुष्य 'सर्वार्थी' भी हो सकता है । **'सर्वार्थी' होने के लिए उसको 'परमार्थी बनना पड़ता है – यह हमारी खोज है ।**

लेकिन, वह सर्वार्थी बन सकता है । जब सर्वार्थी बनता है, तभी वह मनुष्य है । स्वार्थी बनता है, तो वह, भर्तृहरी की भाषा में 'अधम' बनता है, 'राक्षस' भी बनता है । हमारे यहाँ नचिकेता की कथा है । अब नचिकेता को यम के पास जाने की क्या जरूरत थी? उसके पिताजी यज्ञ कर रहे थे । पिताजी उससे बड़े थे; उन्होंने दुनिया देखी थी । व्यावहारिक दृष्टि से वे बड़े प्रवीण आदमी होंगे । क्योंकि, उन्होने यज्ञ में सबको दान देने के लिए दूध न देने वाली, वृद्ध गायें लाकर रखी थीं । व्यावहारिक दृष्टि से चतुर आदमी ही ऐसा करता है। लेकिन, नचिकेता को लगा कि 'यह ठीक नहीं । दान देना ही है, तो अच्छा देना चाहिए । नहीं तो, दान का उपयोग क्या है?' नचिकेता को ऐसा क्यों लगा? नचिकेता ने मनुष्य जैसा विचार किया । अतः वह पिताजी के पीछे लगा । इसलिए पिताजी ने गुस्से से कहा कि "जाओ, तुमको यम को दे दिया है ।" और फिर उसका वह प्रसिद्ध 'कठोपनिषद का संवाद' हुआ । तो हमारे प्राचीन कथाओं में लोगों की यह प्रवृत्ति मिलती है, कि वे जब विचार करते हैं, तो सबके सुख का विचार करते हैं । हमारे देश की उत्पत्ति के बारे में भी वेदो में ऐसा ही कहा गया है कि हिमालय की दोनों भुजाओं में आबद्ध सागरपर्यंत फैली हुयी इस भूमि में बसा यह देश, उत्तर से दक्षिण तक और पूरब से पश्चिम तक कैसा एक ही भाव से भरा है? वह भाव कौनसा है? हमारे यहाँ ऋचा है ***ॐ भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपो दीक्षामुपसे दुरग्रे ततो राष्ट्रं बलमोजस्व जातम् । तदस्मै देवाः उपसन्नमन्तु ॥*** "सर्व लोकों के कल्याण की इच्छा रखने वाले स्वर्विद याने बाकी या परे की सृष्टि का ज्ञान रखने वाले, याने जो आत्मसाधना में रत है, उसीको वह ज्ञान होता है, ऐसे ऋषियों ने सब लोगों के कल्याण की इच्छा रख कर जो तपस्या की; उसमें से हमारे राष्ट्र को बल और ओज प्राप्त हुआ ।" **तो हमारा राष्ट्र लोककल्याणकारी राष्ट्र है** ।

मोक्ष तो सबके पास है, हमारे पास भी आ गया । हमारे मुक्त लोगों ने विचार किया कि 'यह मुझे मिला; लेकिन, सारी दुनिया सुखी होनी चाहिए । सारी दुनिया को यह मिलना चाहिए ।' अब आर्त, अर्तार्थी और जिज्ञासु तो बहुत रहते हैं; मुमुक्षु कम मिलते हैं । हमारे ऋषियों ने सोचा होगा कि मुमुक्षुओं की संख्या हमेशा अत्यंत अल्पमत

में रहेगी । फिर भी धीरे–धीरे प्रत्येक आर्त और अर्तार्थी की जिज्ञासा जग कर, वह जिज्ञासू होने के बाद, उसको मुमुक्षु होना चाहिए; ऐसा वातावरण, हम सामुहिक जीवन में रख सकते है क्या? जीवन जीते समय, हमारा वह जीवन ही ऐसा हो, हमारे संस्कार ही ऐसे हो कि हमारी प्रवृत्ति इधर आत्म–साक्षात्कार की ओर बनें । क्योंकि, **आत्म–साक्षात्कार ही जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है ।**

"आत्मा को अपने सामने प्रत्यक्ष कर के सारी भौतिक दुनिया के बंधनों के परे हो जाना और जब तक देह रहता है, तब तक सुखपूर्वक 'उसी'की उपासना में रत रहना" – यही हमारे यहाँ जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है । जीवन में इस दिशा में मनुष्य को ले जाने वाला जीवन कैसा होता है? तब उन्होंने सोचा और ऐसे जीवन की रचना की । इसलिए जैसे पहली बात मैंने कही कि भारत की दुनिया को पहली देन यह है : "सुख अपने अंदर है और उस सुख का निधान जो आत्मा है, वह परमात्मा का ही अंश है । याने परमात्मा और आत्मा एक है; उसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार करना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है । वह लक्ष्य प्राप्त करने से चिरंतन सुख की प्राप्ति होती है" – यह पहली बात है । और जैसे दूसरी बात मैंने बतायी : "सारी साधनाएँ एक ही जगह पर पहुँचती हैं ।" वैसे यह दूसरी बात भी हमारे लोगों ने खोज कर निकाली, अपने सामने प्रत्यक्ष की और दुनिया को बतायी : 'अनेक भगवान नहीं है । एक ही है' । और हमारे लोग 'एक ही है' के भी आगे गएं । उन्होंने कहा, 'केवल वही है' । ***ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः ।*** और तुम भी वही हो : ***तत्त्वमसि ।*** यह तुमने मेरे से सुना; श्रद्धापूर्वक माना, अब विचार करो, तर्क से समझ लो और प्रत्यक्ष प्रयोग करो और अनुभूति में देख लो कि 'तुम वही हो' ।

हमारे लोगों ने कहा कि अगर ऐसा है ***ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः ।*** तो यह दिखने वाली सृष्टि, मिथ्या याने झूठ नहीं; **मिथ्या याने relative truth** । हम जब तक ये आत्मानुभूति के प्रयास में यशस्वी नहीं होतें, जब तक हम भौतिक स्तर पर जी रहे हैं; तो हमारे लिए यह भौतिक जीवन ही सत्य लगता है । लेकिन, वह वास्तविक सत्य नहीं है । सदा और शाश्वत सत्य वाला जीवन 'वहाँ'

है । 'वहाँ तक हमको जाना है । लेकिन, तब तक इस स्तर पर जीकर, हमको जाना पड़ेगा । यह दुनिया तो विविधताओं से भरी है । इसमें तो सब अनेक है । ये अनेक क्या है? हमारे लोगों ने कहा – 'यह अनेकता में एकता है' । एकता का ही यह विविध व्यक्तीकरण है । इसलिए इस अनेकता में भेद ढूंढ़ना, विरोध ढूंढ़ना, यह गलत बात है।

'अनेकता में एकता है' । और अगर 'अनेकता में एकता है', तो इस अनेकता के साथ हमारा व्यवहार सहिष्णुता का और समन्वय का ही होना चाहिए । सहिष्णुता और समन्वय के साथ यदि चलना है, तो आपको अपने आप पर बंधन लाने पड़ते हैं । सबके जीवन का विचार करना पड़ता है । संयमपूर्वक जियो! और अगर आपका लक्ष्य आत्म–साक्षात्कार का है, तो इन वस्तुओं के छंद में और उलझते जाना, यह नहीं चलेगा । धीरे–धीरे इसको आपको छोड़ना है । "त्याग करो ।" ***न हि प्रजया, न कर्मणा, त्यागेन एकेन अमृतत्त्वमानशु ।*** ऐसा कहा है और दुनिया में जीते समय दुनिया के सब बातों के प्रति कृतज्ञता बुद्धि से जियो । ये क्या है? ऐसा जीने से आप इहलोक में भी सुखी होंगे, परलोक में भी सुखी होंगे । **आपको अभ्युदय भी प्राप्त होगा, आपको निःश्रेयस भी प्राप्त होगा । इसको हमारे यहाँ कहा गया है: "यह शाश्वत धर्म है ।"**

जितने भी भारतीय Religions हैं, **Those are Hindu Religions. There is no Hindu Religion.** भारत से निकले जितने Religions हैं : कोई आत्मा को मानने वाले है, कोई न मानने वाले है, सत्य की अंतिम अनुभूति के बारे में हर एक की परिभाषा अलग है । वे अनुभूतियाँ सापेक्ष हैं । इसलिए वे अलग–अलग हो भी सकती हैं । हमारे महर्षियों ने प्रत्यक्ष आचरण कर के, यह देख लिया है कि शब्द अलग है, आपका वर्णन अलग है । लेकिन, बात एक ही है । इन सब भारतीय धर्मों में, अब मैं धर्मों को Religion के अर्थ में उपयोग कर रहा हूँ, इन सब भारतीय धर्मों में ये बातें कायम हैं । **'विविधता में एकता', 'सहिष्णुता', 'कृतज्ञता', 'त्याग' और 'संयम'** । किसी न किसी बात पर जोर अधिक दिया गया है; किसी न किसी बात पर जोर कम दिया गया है । जिस समय वह Religion निकला है, उस समय की परिस्थिति के अनुसार विशिष्ट तत्त्व पर जोर अधिक

दिया गया है । भगवान बुद्ध के समय अपने समाज में हिंसा बहुत व्याप्त थी, भगवान बुद्ध 'करुणावतार' हुए । महावीर के समय हमारे यहाँ उपभोग बहुत बढ़ा था, महावीर परम कोटी के विरक्त है और परम अहिंसक है । वेदों के काल में हमारे यहाँ, अपने जीवन को खड़ा करना था, इसलिए वेदों में पारलौकिक जीवन की साधना के साथ भौतिक जीवन के पुरुषार्थ का भी बहुत उल्लेख है । **सबका शाश्वत धर्म एक है, अशाश्वत नष्ट हो जाएगा ।**

एक गुरु ने अपने शिष्य को उपदेश किया कि "सर्वत्र नारायण है । किसी भय की आवश्यकता नहीं । मैं भी नारायण हूँ, तुम भी नारायण हो, सारी दुनिया नारायण है ।" उसने कहा, "ठीक है ।" गुरु का उपदेश शिरोधार्य मान कर, वह बाजार में चला गया । बाजार में एक पागल हाथी आया । उसने सबको रौंदना प्रारंभ किया; सूंड से उठा कर सबको फेंक देना प्रारंभ किया । इसने सोचा कि "सब नारायण है, हाथी भी नारायण है ।" हाथी पर महावत था । लेकिन, हाथी उसके नियंत्रण में नहीं था । तो शिष्य हाथी के सामने जाकर खड़ा हो गया । अब पागल हाथी आया, उसने उसको सूंड में लपेटा और दूर फेंक दिया; हाथ–पैर टूट गएं । लोगों ने उठाया, वैद्य के पास ले गएं, बाँधा वगैरे और गुरु के पास ले आएं । गुरु ने कहा, "तुम्हारी यह दशा ऐसे–कैसे हो गयी?" उसने कहा, "महाराज, आपके उपदेश के कारण हो गयी ।" "मेरा उपदेश?" "हाँ, आपने कहा था कि सर्वत्र नारायण है, हाथी–नारायण आया, मैं भी नारायण, मैं बाजू नहीं हटा ।" "यही तो गलती हुयी । तुमने समझा नहीं ।" बोले, "क्या? समझा नहीं?" "मैंने कहा – सर्वत्र नारायण है । तो हाथी–नारायण पर जो महावत–नारायण अंकुश लेकर बैठा था, वह क्या कह रहा था?" "वह तो जोर–जोर से चिल्ला रहा था, 'भागो, भागो । बाजू हो जाओ, बाजू हो जाओ ।" "तुमने उस नारायण की तो सुनी नहीं । इसलिए तुमको यह सजा हुयी ।"

सर्वत्र नारायण देखना है । लेकिन, जब तक हम भौतिक स्तर पर है; हाँ, यदि आप भगवान बुद्ध जैसे उच्च स्तर पर जी रहे हैं, तो आपके सामने विषैला नाग भी मुँडी डाल देता है और पागल हाथी भी आकर आपको वंदन करता है । लेकिन, आप वैसे नहीं हैं, तब तक

आपको व्यावहारिक नीति अलग बनानी पड़ती है । समय-समय पर हमारे यहाँ उसके आधार पर आचार धर्म बनाया गया है । एकपत्नी व्रतधारी राम भी ब्रह्मचारी है, वामन भी ब्रह्मचारी है और सोला हजार एकसौ आठ नारियों के पति कृष्ण भी ब्रह्मचारी है । क्योंकि, उस समय समाज की जैसी आवश्यकता थी, वैसे 'अपने धर्म की अभिव्यक्ति कैसे करना?' वह उन्होंने तय किया । वे अधिकारी पुरुष थें । उन्होंने वैसा किया, इसलिए हमको सारी छूट है – यह गलत बात है । समय-समय पर ये जो साक्षात्कारी, अधिकारी पुरुष रहते हैं, वे जैसी समाज के आचार धर्म की मर्यादा बताते हैं, समाज के सब लोगों को वैसा व्यवहार करना चाहिए – यह धर्म है, जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्धि की प्राप्ति होती है ।

अपने यहाँ, यह "धर्म" शब्द क्या है? मैट्रिक में मेरी एक भौतिक शास्त्र की मराठी किताब थी । उसका विषय था : 'General Properties of Matter'; उसका शीर्षक था : 'सामान्य वस्तु धर्म' । आग का धर्म है जलाना, पानी का धर्म है बहना । यह धर्म है; यह स्वभाव भी है । लेकिन, सब लोग यदि अपने-अपने स्वभाव से चलने लगेंगे, तो अनर्थ हो जाएगा । हमको साथ में जीना है; सहिष्णुता व समन्वय से जीना है । तो धर्म पर कर्तव्य का बंधन आता है । इसलिए **कर्तव्य को भी अपने यहाँ 'धर्म' कहते हैं । पुत्रधर्म है, पितृधर्म है, प्रजाधर्म है, राजधर्म है ।** तो सबको अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की प्राप्ति हो, इसलिए सबके स्वभाव को ध्यान में लेकर, सबके कर्तव्यों का जो निर्धारण किया जाता है, उसके जो नियम बनते है, वह **आचारधर्म इन शाश्वत तत्त्वों पर आधारित है – यह भारत की दुनिया को तीसरी देन है ।**

क्योंकि, आज दुनिया के सामने जो समस्याएँ हैं, अशांति है, वे सब धर्म भूलने के कारण हैं । धर्म छोड़ दिया, पर्यावरण असंतुलित हो गया । बेतहाशा जंगल काट डालें, पृथ्वी को खोद कर खराब किया, जल में कचड़ा छोड़ कर उसको खराब किया, हवा में धुँवा छोड़ कर उसको खराब किया । अब जीना खराब हो गया । क्यों खराब हो गया? मनुष्य पराकोटी के उपभोग के पीछे लग गया । इससे संतुलन बिगड़ गया । उपभोग चाहिए । शरीर को तृप्त करना है।

सब लोग विरागी नहीं होतें । तो सामान्य व्यक्ति को एक मर्यादा में भोगों का उपभोग लेकर, वह अपनी साधना में बाधा न लाएं, इतना देखना पड़ता है । उसका अपना एक संतुलन है । आपने उस संतुलन को छोड़ दिया; भोगों को ही लक्ष्य माना । वह संतुलन धर्म है । अर्थ, काम और मोक्ष इसमें balance चाहिए । इसीलिए समर्थ ने कहा है: ***प्रपंच करावा नेटका । मग घ्यावे परमार्थ विवेका ।*** नहीं तो, सामान्य लोग परमार्थ–विवेक करने की झंझट में जाएंगे ही नहीं । अगर वे यह मानेंगे कि सब साधुओं की गृहस्थी नष्ट हो जाती है, तो फिर वे जाएंगे ही नहीं । उनकी बुद्धि ही नहीं होगी । कौन छोड़ के जाएगा? किसने भगवान को देखा है? हाँ, जो कर रहा है, उसने देखा है । इन्होंने नहीं देखा है । इसलिए कहा है : ***प्रपंच करावा नेटका । मग घ्यावे परमार्थ विवेका ।*** यह balance है; **यह balance धर्म है** ।

अर्थ, काम और मोक्ष को जोड़ने वाला तत्त्व है 'धर्म' । वह उन सबको सुसूत्र बनाता है । व्यक्ति, समूह (समष्टि), सृष्टि इसको जोड़ने वाला तत्त्व 'परमात्मा' है; 'परमेष्टि' है । अगर व्यक्ति सबमें परमात्मा देखेगा, तो संतुलित व्यवहार करेगा । सो शरीर–मन और बुद्धि को सुसूत्र रख कर, गंतव्य की ओर चलाने वाला, जोड़ने वाला तत्त्व 'आत्मा' है । **भारत ने 'आत्मा' और 'धर्म' के रूप में ये जोड़ने वाले तत्त्व दुनिया को दिए है** । और शायद, अपने योगी अरविंद जैसे महर्षियों के कहने के अनुसार, 'भारत का यह ईश्वर–प्रदत्त कर्तव्य है कि दुनिया में जब इस सनातन धर्म का लोप होकर, दुनिया का संतुलन खो जाएगा, तब उसका खोया हुआ संतुलन वापस लाने के लिए समय–समय पर यह आत्मज्ञान और धर्मज्ञान दुनिया को देना, यही भारत का कर्तव्य है । जब यह कर्तव्य उपस्थित हो जाता है, तब भारत का उत्थान होता है ।'

भारत का उत्थान किस लिए होना चाहिए? स्वामी विवेकानंद कहते हैं, **'हे भारत! तुम्हारा उत्थान दुनिया के सुखोपभोगों का राजा बन कर, सारी दुनिया को अपने शासनदंड से दंडित करने के लिए नहीं है। तुम माँ काली की बलिवेदी पर बलि देने के लिए बाँधे हुए पशु हो । तुमको भगवान शिव जैसा दुनिया के कल्याण के लिए हलाहल प्राशन करने का कर्तव्य करना है ।'** भारत के उत्थान का यह अर्थ है और दुनिया इसीलिए उसकी प्रतीक्षा में है । दुनिया को अब संतुलन

साधना कठिन हो रहा है । दुनिया के सामने जो भी विचारधाराएँ हैं, तर्कधाराएँ हैं, वे 'मोक्ष' के मामले में तो दुनिया को समाधानी बना सकती हैं । लेकिन, उनके पास यह 'धर्म' नहीं है । उन्होंने धर्म की रचना मोक्ष के आधार पर नहीं की है । उन्होंने अपने धर्म की रचना अपने भौतिक स्वार्थों के आधार पर की है । **'ख्रिश्चॅनिटी'** और **'चर्च्यानिटी'** यह अलग हैं । **'ईसा मसीह'** और **'पोप'** दो अलग वस्तुएँ हैं । **'पैगंबर साहब'** और आज के **'मुल्ला-मौलवी'** भी अलग वस्तुएँ हैं । वह धर्म नहीं है । वहाँ पर इस प्रकार सभीको मुमुक्षु बनाने वाली सामाजिक जीवन की रचना नहीं है; मालूम नहीं है । हमारे यहाँ सृष्टि का यह सारा संतुलन कायम रखते हुए, संपूर्ण सृष्टि के जीवन की धारणा हो और उसके आधार पर सारा जगत परमेष्ठि की अनुभूति कर सकने की राह पर चल पड़ें, इस प्रकार की उसको दिशा मिलें, ऐसा जीवन दिया गया है । इसलिए हमारे यहाँ कहते हैं – ***धारणात् धर्ममित्याहु धर्मो धारयते प्रजाः ।*** इस आत्मज्ञान के बिना और धर्मज्ञान के बिना व्यक्ति और समाज सुखी नहीं हो सकतें । सृष्टि सुखी नहीं हो सकती ।

सृष्टि, मनुष्य और समूह, तीनों के सुख के लिए तरह-तरह के प्रयोग कर के दुनिया निराश हो गयी है । भारत उसकी आखरी 'आशा की किरन' है और भारत के पास यह 'धन' है । वास्तव में यह 'मानव धर्म' है । **हमारा धर्म शास्त्र,** जो मनु महाराज ने रचा है, वह 'हिंदु धर्मशास्त्र' नहीं है; **'मानव धर्मशास्त्र' है** । हमारे किसी भी साक्षात्कारी महापुरुष ने केवल हिंदुओं के लिए उपदेश नहीं किया है; सबके लिए किया है । हमारे साक्षात्कारी महापुरुषों ने सब पंथों के मंत्र दिए हैं । स्वयं श्री गुरुदेव के पास पारसी, ईसाई और इस्लाम धर्म के भी मंत्र आते थें और भक्तों को वह देते थे । पॉल ब्रंटन रमण महर्षि के पास मिलने के लिए गए और कहा कि "मैं प्रभावित हो गया हूँ । मैं हिंदु होना चाहता हूँ ।" तो रमण महर्षि ने कहा, "हिंदु होने की आवश्यकता नहीं है । तुम्हारा ईसा मसीह पर जो विश्वास है, उसको तुम अधिक दृढ़ बनाओ और प्रामाणिकता से चलो । तो ईसाई रह कर ही तुम मोक्ष पा जावोगे ।" क्योंकि, हमारे यहाँ धर्म है ।

धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्म किं न सेव्यते? ऐसा व्यास महर्षि ने तड़प कर लोगों को पूछा है । *ऊर्ध्व बाहु विरोम्येष न च कश्चित्*

शृणोति माम् । मोक्ष की अनुभूति के आधार पर सृष्टि की धारणा के शाश्वत तत्त्वों का शाश्वत धर्म खोज कर, उसके आधार पर युगानुकूल आचार धर्म, उसके आधार पर भारत का जीवन खड़ा होना चाहिए; ताकि दुनिया को नये सुख–शांति की राह का पता चल सकें । यह हमारा कर्तव्य है और यह हम ही कर सकते हैं । क्योंकि, बाकी लोगों के पास अनुभूति है, अनुभूति करने वाले साक्षात्कारी महापुरुष हैं । लेकिन, उस पर चलने की बुद्धि नहीं है । उनकी समाज धारणा स्वार्थ के तत्त्व पर है और इसलिए वे **दुनिया को बाँट देते हैं – 'believers and non-believers';** और 'non-believer' कितना भी अच्छा क्यों न हो, वह नरक में जाएगा; और 'believer' कितना ही पापी क्यों न हो, उसको क्षमा मिलेगी । प्रत्यक्ष आचरण में यह जो anamoly आयी है, उसका कारण ही यही है कि वहाँ–वहाँ के **साक्षात्कारी पुरुषों की अनुभूतियों के आधार पर उन्होंने अपने सामाजिक धर्म की रचना नहीं की है ।**

हमारी अवनति का कारण भी यही है । हमारे साक्षात्कारी पुरुषों की अनुभूतियों को भूल कर, हमने अपने सामाजिक जीवन को पिछले १५०० वर्षों में चलाया । अब चमत्कार हुएं कि नहीं, यह मालूम नहीं । लेकिन, उसमें से मिलने वाला बोध तो सत्य है । अगर एकनाथ महाराज कहते है कि गधे को गंगा पिलाने से रामेश्वर को पहुँचती है; तो हमारे लोगों में इतनी निष्ठूरता कहाँ से आ गयी कि अपना, अपने समाज का बंधु, वह गरीबी में मर रहा है और इनकी आँखों में आँसू तक नहीं आतें? हमने अपने धर्म को छोड़ दिया । हमने घट–घट में राम देखने वाली संतों की दृष्टि को अपने व्यवहार में नहीं लाया; हमने अस्पृश्यता को माना । अतः हमारी अवनति हुयी।

भारत का तारक और सारी दुनिया का तारक यह सनातन धर्म है। सनातन धर्म का निर्माण इसी आत्मानुभूति पर हुआ है । उस एक शाश्वत, चिरंतन तत्त्व की अनुभूति पर हुआ है और कोई अनुभूत व्यक्ति उस अनुभूति पर श्रद्धा–विश्वास रखने को नहीं कहता । वह कहता है : "मैंने ऐसा देखा है । तुमको देखने की इच्छा है, तो मैं जो कहता हूँ, वैसी तपस्या करो, तुम भी देख लोगे ।" जैसे विवेकानंद को कहा, जब वे नरेंद्र थे, तब । नरेंद्र ने रामकृष्ण परमहंस को पूछा,

"क्या आपने भगवान को देखा है?" रामकृष्ण परमहंस ने बताया, "देखा है क्यों? देख रहा हूँ। बात भी करता हूँ। तुमको जितना देखता हूँ, उससे ज्यादा स्पष्ट उसको देखता हूँ और अगर तुम यह तपस्या करने के लिए तैयार हो, तो तुमको दिखा भी सकता हूँ।" यह केवल theory नहीं है; तार्किक उपपत्ति नहीं है; hypothesis भी नहीं है। हमारे पास यह अनुभूत, रोकड़ा सत्य है।

और इसलिए जब हम हमारे संतों की प्रार्थना देखते हैं : ***सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःखमाप्नुयात्॥*** कौन शत्रु है? कौन मित्र है? कुछ विचार नहीं है। सब। सबका कल्याण हो। भगवद्गीता पर इतनी बड़ी, सुंदर 'ज्ञानेश्वरी' लिखने के बाद, ज्ञानेश्वर 'पसायदान' माँगते है, तो वे केवल कृष्णभक्तों के लिए नहीं माँगते। वे कहते हैं: ***आता विश्वात्मकें देवे, येणे वाग्यज्ञे तोषावे। तोषोनि मज द्यावे, पसाय दान हे॥ जे खळांचि व्यंकटी सांडो।*** दुष्ट लोगों के लिए भी, "ये दुष्ट लोग नष्ट हो जाएं" ऐसा नहीं कहते। "दुष्ट लोगों का टेढ़ापन चला जाएं। उनको सत्कर्म में रति बढ़ें और सब जीव मात्र में परस्पर मित्रता बढ़ें।" – हमारी यह दृष्टि ही, जिसके आधार पर हमने धर्म की रचना की है, उस आत्मानुभूति की दृष्टि है। उसकी आवश्यकता सारी दुनिया को है। तो वह केवल हिंदुओं का धर्म नहीं है।

आजकल उसको 'हिंदु धर्म' कहते हैं, यह बात सही है। ऐसा होता है : हमको भी उसको 'हिंदु धर्म' ही कहना पड़ेगा। **वास्तव में वह 'मानव धर्म' है, 'बंधुभाव' है, 'मानवता' है**। लेकिन, यह दुनिया नहीं समझती। इन नामों को दुनिया भूल गयी है। दुनिया 'हिंदु धर्म' को समझती है। ऐसा होता है – मैं कोई नाम ब्रह्माजी के घर से ले के नहीं आया। मेरे शरीर पर कोई मेरा नाम कहीं लिखा नहीं था। माता–पिता ने मेरा नाम रखा। 'मोहन' रखा। मुझे बिलकूल पूछा नहीं। मेरी अनुमति नहीं ली। मेरी इच्छा पूछी नहीं। दुनिया ने उसीको पकड़ा। दुनिया मुझे 'मोहन', 'मोहन' कहती है; तो मैं 'मोहन' बन गया। अब वह 'मोहन' ही कहना पड़ेगा। इतने लोगों में मुझे अगर कोई 'पांडुरंग' इस नाम से आवाज देगा, तो मैं नहीं

देखूंगा; और यदि कोई और 'मोहन' है और उसको आवाज देगा, तो मैं देखूँगा । क्योंकि मेरा नाम 'मोहन' है । मेरा कहाँ का है? मुझे तो वह दुनिया ने दिया हुआ नाम है । वह मुझे चिपक गया है ।

हम लोग संपूर्ण सृष्टि को अपना मानने वाले थें । हमको किसी नाम की जरूरत नहीं थी । लेकिन, दुनिया ने जब दुनिया में 'दो' करना शुरु कर दिया, तब दुनिया को नाम की जरूरत पड़ी । तब 'सिंधु' नदी के उधर रहने वाले ये लोग 'हिंदु' हैं – ऐसा हो गया । वही नाम चल पड़ा, वही नाम चिपक गया और इसीलिए लोग कहते हैं कि "मैं हिंदु हूँ ।" अब वह प्रसिद्ध अभिनेत्री ज्यूलिया रॉबर्ट्स हिंदु बन गयी । उसने क्या कहा? "मैं क्यों हिंदु बनी हूँ? हिंदुओं में किसी विशेष system को चिपके रहो; किसी विशेष भगवान की पूजा करो; ऐसी आवश्यकता नहीं । अपनी साधना ठीक करो । साधना को मत छोड़ो । दूसरा पंथ मत लो । एक पंथ पकड़ा है, उसपर प्रामाणिकता के साथ चलो, आपको वही मिलेगा । लेकिन, वही सब कुछ है, केवल उसीमें ही होगा; दुसरे में बिलकुल नहीं होगा, ऐसा नहीं है ।" हाँ, यह बात सही है । श्री गुरुदेव ने कहा है; और वह 'बोधसुधा' सहित सब पुस्तकों में है : **'दृढ निश्चय चाहिए; सद्‌गुणों का विकास करते रहना चाहिए; दोषों को दूर करना चाहिए; और सतत साधना करना चाहिए ।'** ये चार बातें सब जगह आवश्यक है । बाकी स्वरूप तुम कैसा देखते हो, कल्पना क्या करते हो, वह सब गौण है । वह तो तुम्हारी स्वतंत्रता है; तुम्हें जो कुछ करना हैं, तुम करो ।' इतना **उदार यह धर्म है ।**

इतना उदार धर्म है, तो उसको एक समाज का नाम क्यों मिला? इसीलिए मिला कि यह सारा विकास इस भारत भूमि के चहारदिवारी में हुआ । मैं जब भारत भूमि कहता हूँ, तो आज का भारत छोटा है । काबुल–जाबुल के पश्चिम से चिन्दविन् नदी के पूरब तक, और चीन के तरफ की तिब्बती ढलान से श्रीलंका के दक्षिण तक इस पूरे भूभाग के अनुभव में इसका विकास हुआ है । इसलिए यह भारतीय धर्म है । लेकिन, इतिहास में भारत की bounderies कम–जादा होते रहती है । इसलिए लोग इसको समाज के नाम से जानते हैं । समाज को 'हिंदु' माना गया है । **वास्तव में इस चहारदिवारी में**

रहने वाले सब लोग 'हिंदु' हैं । क्योंकि वे दुनिया में अन्यत्र नहीं जा सकतें; उनका जीना-मरना इसी भूमि में है ।

समान पूर्वजों के वंशज हैं । DNA का testing हुआ; तो इतने भूभाग में रहने वालों के पूर्वज कम से कम ४०,००० वर्षों के पूर्व से समान पूर्वज हैं । हमारा रक्त एक है और इस संस्कृति को हम मानते हैं । इसलिए, भारतभूमि के बाहर से आए हुए मत-पंथों के यहाँ के रूप भी ज्यादा उदार हैं । अभी internet पर कॅनडा में रहने वाले एक मुस्लिम व्यक्ति का पत्र आया । मैंने वह पढ़ा । किसीको आया था, उसने मुझे forward किया । वह लिखता है : "मेरी बहुत इच्छा है कि "मेरे बच्चे अच्छे मुसलमान बनें । कहाँ रह के बनेंगे? मैं तो पश्चिम के कॅनडा में रहता हूँ । मैं इनका जीवन देखता हूँ । तो मुझे लगता है कि यह तो भोगलंपट जीवन है; इसमें वह अच्छा मुसलमान नहीं बन सकता । फिर मैं अपने मुसलमान भाइयों की भूमिओं को देखता हूँ, अरबस्तान को देखता हूँ, तुर्कस्तान को देखता हूँ, ईरान को, ईराक को, तो मुझे लगता है कि वहाँ जाकर यह तो कारस्तानी बनेगा; ज़िहादी, अतिरेकी बनेगा; यह तो कट्टर बन जाएगा; अच्छा मुसलमान नहीं बन सकता । फिर वह कहता है कि मुझे दुनिया में एक ही देश नजर आता है, जो हिंदुओं का हिंदुस्थान है, इस हिंदु समाज की majority में अगर वह रहेगा, तो अच्छा मुसलमान बनेगा।"

अतः हिंदुओं, जरा जागो! अपने हिंदुत्व का जतन करो!! उसको सारी दुनिया को दो, सारी दुनिया सुखी हो जाएगी!!! किसी भी कोण से बात को देखते हैं, तो बात यही पर आती है कि दुनिया को हमारी आवश्यकता है । दुनिया की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए हमको लायक बनना है । हमारे सामने कर्तव्य उपस्थित है । ईश्वरप्रदत्त कर्तव्य है । इस धर्म को, जिसको मैं Religion नहीं कह रहा हूँ, समाज की धारणा करने वाले, अभ्युदय-निःश्रेयस सिद्धि को प्राप्त कराने वाले, स्वभाव के नियमन का, कर्तव्य का मार्ग दिखाने वाले इस धर्म को व्यष्टि-समष्टि-सृष्टि-परमेष्टि सबको जोड़ने वाले इस धर्म को सारी दुनिया को देने के लिए उस धर्म का, उसके नाम का गौरव मन में धारण कर, हमको एक होकर, सबको अपने भेदों व स्वार्थों को छोड़ कर, इस धर्म के आधार पर भारतवर्ष के परम वैभव का

जीवन खड़ा करना पड़ेगा। तब दुनिया मानेगी और इसके लिए प्रयास होना चाहिए।

प्रयास की दो धाराएँ हैं। दोनों धाराएँ आवश्यक हैं। दोनों धाराएँ महत्त्वपूर्ण हैं। इस धर्म के मूल में जो अनुभूति है, जो साधना है, जो उपासना है, उसको एकांतिक भाव से करना पड़ता है। सब छोड़ कर करना पड़ता है। कुछ लोग सब छोड़ कर इसी भाव में लगे रहेंगे। श्री गुरुदेव का ही उदाहरण है। सातारा के एक साधक ने उनको पूछा था, "मुझे अहमदाबाद में ऐसा एक प्रश्न पूछा गया कि स्वतंत्रता के लिए इतना आंदोलन चल रहा है। कल नई पीढ़ी पूछेगी कि देश की स्वतंत्रता के लिए आपने क्या किया? तो हम क्या उत्तर देंगे?" तो श्री गुरुदेव ने उत्तर दिया, "मैं जो कर रहा हूँ, मेरी समझ में मेरी देशभक्ति यही है।" अब यह बात ऐसी ही नहीं कही थी; अपनी साधना का केवल समर्थन करने के लिए नहीं की थी। वास्तव में यह देशभक्ति है। गुरुदेव ने जो 'उपनिषद रहस्य' लिखा है, उसमें कहीं उन्होंने लिखा है, "पाश्चात्य लोगों ने अपने-अपने तत्त्वज्ञान के बड़े-बड़े ग्रंथ लिखें और यह समझ प्रसारित किया कि भारतवर्ष के पास समझने के लिए कुछ है ही नहीं। तो मैं उन्हीं की भाषा में और उन्हीं की तर्क पद्धति से अपने तत्त्वज्ञान का मंडन करके यह दिखा दे रहा हूँ कि पाश्चात्यों को भी विचार करने लायक भारत के पास बहुत कुछ है।" क्या ये उद्‌गार देशभक्ति के नहीं है?

यह एक धारा है, यह करना पड़ेगा। रामकृष्ण-विवेकानंद यदि नहीं होतें, तो अपने देश में तिलक-गांधी भी नहीं होते। यह एक धारा है और दूसरी धारा है : इन लोगों के अनुभूतिजन्य विचारों के आधार पर प्रत्यक्ष समाज जीवन को खड़ा करने हेतु उसके लिए उसी एकांतिक भाव से परिश्रम करने वालों की। क्योंकि, वह भी उतना ही कष्टमय काम है। जैसे, संघ काम करता है; राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ। वह क्या करता है? सारा संबंध आता है भौतिक बातों से। लेकिन भौतिक बातों के प्रति संघ जो विचार करता है, वह सारा का सारा विचार हिंदु तत्त्वज्ञान पर, याने आत्मानुभूति पर आधारित विचार है। अगर आप द्वितीय सरसंघचालक श्रीगुरुजी, जिन्होंने डॉक्टर हेडगेवार के विचार का भाष्य प्रस्तुत किया है, उनके भाषण सुनेंगे-पढ़ेंगे, तो

प्रत्येक भाषण में आध्यात्म है । वे भी प्रत्यक्ष अनुभूति करने वाले महापुरुष थें ।

तो एक धारा यह है; और दूसरी धारा समाज में काम करने वालों की है । इन दोनों धाराओं को अपने आपको सतत साधनारत रखते हुए, पूरक बन कर चलना पड़ेगा । उसमें से भारत का परम वैभव प्राप्त होगा । भारत की स्वतंत्रता के बाद ६० साल में जो प्रयोग हुएं, उसमें यह आधार नहीं है और इसलिए करोड़ो रुपया खर्चा हो गया; अच्छे-अच्छे नेता भी हो गएं; आज भी हैं । प्रयास कम नहीं हुआ, भ्रष्टाचार वगैरे सब है । लेकिन, प्रत्यक्ष प्रयास भी कम नहीं हुएं। लेकिन, फल नहीं मिलता है । हम भी pendulum जैसे ही कर रहे हैं। पहले पंचवार्षिक योजना, बाद में समाजवाद; अब मुक्त अर्थव्यवस्था, बाजारवाद; फिर अब कह रहें हैं कि अपनी देश की अवस्था के अनुसार उसको जरा limit करेंगे; उनके जैसा हमारा भी इधर से उधर हो रहा है । क्योंकि, इसका जो शाश्वत आधार है, उस आधार पर विचार करना चाहिए । वह नहीं हो रहा है । उस शाश्वत बात की साधना करने वाले और उस साधना को प्रत्यक्ष जीवन में धर्म के रूप में, applied science के रूप में उपयोग करने वाले, ऐसे **दोनों प्रकार के कार्यकर्ताओं को अपना-अपना काम तेज कर के, पूरक बन कर चलना पड़ेगा । यह कर्तव्य हमारे सामने उपस्थित है ।**

हम अपना-अपना काम व्यवस्थित करेंगे । हमारे तत्त्वदर्शी ऋषि जो प्राचीन समय में हो गए हैं, और जो आज भी साधना कर रहे हैं, उन सबकी मालिकाओं की आँखों के सामने विश्व का जो दृश्य था, ***वर्षत सकळ मंगळी । ईश्वरनिष्ठांची मांदियाळी । अनवरत भूमंडळी । भेटतु भूतां ॥*** ऐसे ईश्वरनिष्ठों की मांदियाळी बन कर, सारे जगत के त्रस्त जीवन को तृप्त जीवन बनाने का काम करने में हम सब लोग यशस्वी होंगे । हमारे गुरुजनों के आशीर्वाद से हम सब लोग उसमें यशस्वी हों, यह शुभकामना व्यक्त करते हुए, मैं अपने चार शब्द समाप्त करता हूँ ।

धन्यवाद!

तौलनिक धर्म दर्शन अकादमी

(ए.सी.पी.आर.)

संस्थापक **डॉ. आर. डी. रानडे**

ACPR'S AGENDA
Pursuit of Global awareness for

ONE GOD ★ ONE HUMANITY ★ ONE WORLD

World Unification

भारत का उदय

यदि भारत का उदय अवश्यंभावी है, तो माँ भारती आज तक के इतिहास को भी अज्ञात ऐसे अपने ही अति विशिष्ट पथ से उदित होगी। वह पश्चिम व पूरब के सद्‌गुणों का सुंदर संयोग करते हुए उन दोनों से भी श्रेष्ठ बनकर उदित होगी। यदि पश्चिम व पूरब का मिलन होना है, तो वह यूरोप में नहीं, भारत में ही होगा। भारत के सम्मुख कितना गौरवपूर्ण, विलोभनीय भवितव्य प्रस्तुत है! मैं देख रहा हूँ की भारत अपनी अंधश्रद्धाओं, आलस्य व बौद्धिक अकर्मण्यता को त्याग रहा है। मैं देख रहा हूँ की माँ भारती यूरोप की वैज्ञानिक अवधारणा और ऊर्जा को अपना रही है। मैं उसे पूरब का पश्चिम दोनों की उत्कृष्टताओं को आत्मसात करते हुए साथ ही अपनी आध्यात्मिक आत्मा की मूल निष्कलुषित परिशुद्धता व परिपूर्णता को अक्षुण्ण रखते हुए आधुनिक राष्ट्रों की श्रेणी में उदित हो रही है।

–गुरुदेव डॉ. आर. डी. रानडे
(तत्त्वज्ञात्मक व अन्य निबंध : वर्ष १९१२)

Omega, Bgm. Tel. : 0831-2424124